अध्याय - चार

आर्थिक धरातल पर मूल्य विघटन

आर्थिक धरातल पर मूल्य विघटन

अर्थ या धन अपने आप में कुछ दोष नहीं रखता है । जब इस का उचित उपयोग होता है तब समाज केलिए हितकारी बनता है । धन-दौलत की अधिकता एक नेक ज़िन्दगी केलिए विघ्न है । मनुष्य के मालिक के रूप में धन को प्रतिष्ठित करने पर वह उसे बिगाडेगा । "अर्थ" के बारे में ऐसी एक धारणा है - "अर्थ खाद के समान है, जब तक मनुष्य उसे चारों ओर वितरित नहीं करता, तब तक किसी को उससे कोई फायदा नहीं मिलता है ।"[1] अस्वतंत्र भारत की आम जनता अर्थाभाव से, अशिक्षा से पीडित थीं । उन्हें स्वतंत्र करके ऊपर उठाने के महान उद्देश्य से गान्धीजी ने परिश्रम किया था । स्वतंत्रता-आन्दोलन चलाने के पहले, राष्ट्रपिता गान्धीजी के अर्थ सम्बन्धी विचारों पर दृष्टिपात करते हुए रिचार्ड डब्ल्यू टैलर ने इस प्रकार लिखा है -

---

1. "Money is like manure. It does not do anybody any good until you spread it around."
The Joy of working : Denis Waitley and Reni L.Witt, P.264

"सब कुछ परमेश्वर का है और परमेश्वर से हुआ है । इसलिए परमेश्वर ने जो कुछ बनाये हैं सब सभी केलिए हैं, किसी व्यक्ति-विशेष केलिए नहीं है । अपने हिस्से से ज्यादा यदि किसी के पास है तो वह परमेश्वर के लोगों केलिए उस का रखवार ही है[2]।" "संपत्ति लेते हुए कोई इस संसार में नहीं आया था । परमेश्वर की सृष्टि से, जो कोई जबर्दस्त कुछ समय तक धन अपने पास रखता है, मृत्यु के समय ले जाता भी नहीं है । मनुष्य थोडे समय केलिए धन के संरक्षक मात्र है ।" गान्धीजी के वचनों का उद्दरण करते हुए यशपाल जैन ने उपर्युक्त कथन की पुष्टि देते हुए बताया है - "हम सब एक तरह से चोर हैं । अगर मैं कोई ऐसी चीज़ लेता और रखता हूँ, जिस की मुझे अपने किसी तात्कालिक उपयोग केलिए ज़रूरत नहीं है, तो मैं उसकी, किसी दूसरे से चोरी ही करता हूँ । यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज़ केवल उतना ही पैदा करती है जितना हमें चाहिए । और यदि हर एक आदमी जितना उसे चाहिए, उतना ही ले, ज्यादा न ले, तो दुनिया में गरीबी न रहे, और कोई आदमी भूखा न मरे[3]।"

"रुपए का लोभ सब प्रकार की बुराइयों की जड है[4]।"

धन में कोई बुराई नहीं है । धन कमाने केलिए, लोभ के साथ उसे कमाने शुरू करने पर उसमें बुराई निहित रहती है । धन कमाने की यात्रा में भटकते रहने पर अन्त में धन ऐसे लोगों का मालिक बन जाएगा, और लालची मनुष्य रुपए का दास बन जाएगा । अस्वतन्त्र भारत में

---

2. Everything belonged to God and was for God. Therefore, it was for His people as a whole, not for a particular individual. When an individual had more than his proportional portion he becomes a trustee of that portion for God's people."
Society and Religion : Richard W.Taylor,p.38

3. साबरमती का सन्त यशपाल जैन, पृ॰101,102

4. The love of money is the root of all evils".
The Bible, I Timothy 6:10, p.197
(Revised standard version 1952)

आर्थिक असमानता कायम थी । गान्धीजी ने इस हालत का वर्णन यों दिया है - "भारत में लाखों लोग ऐसे हैं जिन्हें दिन में केवल एक ही बार खाकर संतोष कर लेना पडता है और उनके उस भोजन में भी सूखी रोटी और चुटकी-भर नमक के सिवा और कुछ नहीं होता । हमारे पास जो कुछ भी है उस पर हमें और आप को तब तक कोई अधिकार नहीं है, जब तक इन लोगों के पास पहनने केलिए कपडे और खाने केलिए अन्न नहीं हो जाता । हम में और आप में ज्यादा समझ होने की आशा की जाती है । अत: हमें अपनी ज़रूरतों का नियमन करना चाहिए और स्वेच्छापूर्वक अमुक अभाव भी सहना चाहिए, जिस से कि उन गरीबों का पालन-पोषण हो सके, उन्हें कपडा और अन्न मिल सके[5] ।"

"विश्व की संपत्ति समुचे मानव केलिए प्रकृति की देन है ।" उसे एक छोटे जन समूह के लोग कब्जा कर रखते हैं जिस से ही आर्थिक विषमता पैदा हुई है । अर्थ का यह अनुचित उपयोग एक सार्वलौकिक समस्या बन गई है । "संसार के तीस प्रतिशत जनसंख्या के लोग विश्व-संपत्ति के अस्सी प्रतिशत का उपयोग करते हैं और अमरिका जैसे अमीर देश जिस की जनसंख्या विश्व जनसंख्या के छ: प्रतिशत मात्र है - विश्व संपत्ति के चालीस प्रतिशत का इस्तेमाल करते हैं, इस में नैतिक आधार क्या है[6] ?" आर्थिक धरातल पर भारत की हालत अधिक बिगडी हुई है । मुट्ठी भर धनवानों के हाथ में भारत की संपत्ति रहती है, करोडों लोग भूख-प्यास से तडपते हैं । लेकिन ऐशो आराम में पलनेवाले अल्प संख्यक भाग्यवान यहाँ रहते हैं । उन्हें चाहिए कि गरीबों केलिए भी

---

5. Speech and writing of Mahatma Gandhi, p.384

6. Society and Religion Richard W. Taylor, p.39

कुछ दें । "यहाँ सभी की आवश्यकता केलिए काफी है, पर सब की लालच पूर्ति केलिए नहीं है[7] ।"

भारत संपन्न देश है । विश्व भर के सभी विभव धान्य, पेड, जंगल, खनिज, जल-संपत्ति - यहाँ मौजूद है । लेकिन यह सारा धन कहाँ चला जाता है ? इस विषय पर पूर्व प्रधान मंत्री जवहरलाल नेहरू का कथन इस प्रकार है - "बहुत अधिक चीज़ों का उत्पादन करने पर भी ये सभी माल कहाँ गायब हो जाते हैं, इस बात पर अफसोस होता है कि गरीब फिर भी गरीब बनता है । कोई भी काम किये बिना बैठने वाले देश के ठेकेदारों, मैनेजरों के हाथ में आम्दनी का सिंहभाग चला जाता है । वे लोग काम करने का अभिनय भी नहीं करते, लेकिन समाज में वे प्रबल हो गये हैं । इस प्रकार की हमारी सिर फिरी अर्थ व्यवस्था है, जहाँ किसान खेतों में काम करते हैं और मज़दूर कारखानों में काम करते हैं, दुनिया के लोगों को खिलाने केलिए काम करनेवाले वे अधिक गरीब होते जा रहे हैं ।[8]"

---

7. "There is enough for every one's need, but not for every ones greed."
Society and Religion p.39

8. "Where do the riches go to? It is a strange thing that inspite of more and more wealth being produced, the poor have remained poor. They have made some little progress in certain countries, but it is very little compared to the new wealth produced. We can easily see, however, to whom this wealth largely goes. It goes to those who, usually being the managers or the organisers,see to it that they get the lion's share of every thing good. And strange still, classes have grown up in society of people who do not even pretend to do any work, and yet who take this lion's share of the work of others ! And would you believe it? the classes are honoured, and some foolish people imagine that it is degrading to have work for one's living ! ---- such is the topsy-turvy condition of our world. It is surprising that the passent in his field and the worker in his factory are poor,although they produce food and wealth of the world."
Wit and Wisdom De Nehru : N.B. Sen, p.603

भारत के संविधान में अर्थ सम्बन्धी वितरण-क्रम के बारे में ऐसा परामर्शात्मकता है - "राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिस से धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण केलिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो[9]।" भारत के सभी लोगों केलिए समान सुविधायें प्रदान करने का निश्चय स्वतंत्र भारत ने किया है। स्त्री-पुरुष, बालक, विद्यार्थी, उच्च वर्ग, निम्नवर्ग, अनुसूचित-जाति, दुर्बल-विभाग, सवर्ण, अवर्ण आदि भेद के बिना सभी को समान सुविधायें हमारे गणतंत्र संविधान में हैं। स्वतंत्र-भारत का संकल्प करते हुए गान्धीजी ने अपना विचार, स्वतंत्रता के पहले ही व्यक्त किया था "पूर्णस्वराज्य कहने में आशय यह है कि वह जितना किसी राजा केलिए होगा उतना ही किसान केलिए, जितना किसी धनवान जमींदार केलिए होगा उतना ही भूमिहीन खेतिहर केलिए, जितना हिन्दुओं केलिए होगा उतना ही मुसलमानों केलिए, जितना जैन, यहूदी और सिख लोगों केलिए होगा, उतना ही पारिसियों और ईसाइयों केलिए। उस में जाति-पाँति, धर्म अथवा दरजे के भेद भाव केलिए कोई स्थान नहीं होगा।[10]"

हमारे देश की वितरण-शृंखला में आमूल परिवर्तन करने पर आज की अर्थ-विषमता समाप्त होगी। बहता पानी सडता नहीं है। वैसे ही एक ओर ढेर पडने से, कोई भी चीज़ अनर्थ बनेगी। भारत के सम्बन्ध में, देश के धन का विभाजन नये सिरे से करने पर उसमें एक चाल आएगी, परिश्रमी के हाथ धन आएगा। वर्तमान अर्थ-असमानता का

---

9. The state shall in particular direct it's policy towards securing that the operation of the economic system does not result in the concentration of wealth and means of production to the common detriment." The Constitution of India Part IV, 39c, p.13,1988 Edn.

10. साबरमती सन्त - यशपाल जैन, पृ॰88-89

व्यक्त चित्रण डॉ॰मुन्नीलाल विश्वकर्मा ने इस प्रकार दिया है - "नवीनतम सरकारी आंकडों के अनुसार देश की कुल संपत्ति का लगभग 33 प्रतिशत भाग सबसे ऊपर के 5 प्रतिशत परिवारों के हाथ में केंद्रित है, इस में से आधी संपत्ति तो सिर्फ एक प्रतिशत परिवारों के पास है । निम्नतम 5 प्रतिशत परिवारों के हिस्से में देश की संपत्ति का 0·1 प्रतिशत भाग ही आता है । अत: इन दोनों 5 प्रतिशत परिवारों की संपत्ति में असमानता का अनुपात 1:3300 तथा नीचे के एक प्रतिशत एवं ऊपर के एक प्रतिशत परिवारों की संपत्ति में असमानता का अनुपात 1:2000 होगा । देश में भूमि वितरण की असमानताएं काफी अधिक हैं । सरकारी आंकडों के अनुसार बिहार में आज भी 213 ऐसे भूमिपति हैं जिन के पास 200 एकड से अधिक जमीन हैं । इन में से 43 भूमिपतियों के पास 500 एकड से अधिक और 17 भूमिपतियों के पास तो एक हज़ार एकड से भी अधिक ज़मीन हैं । एक भूमिपति के नाम तो अब भी सरकारी रिकार्ड में दस हज़ार एकड जमीन है ।"[11]

हमारे संविधान में प्रत्येक नागरिक केलिए सामाजिक न्याय दिलाने की अवधारणा है - "राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने केलिए कि आर्थिक या किसी अन्य नियोग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा ।"[12]

11· सामाजिक न्याय की प्राप्ति - मंजिल अभी दूर डॉ॰मुन्नीलाल विश्व कर्मा - कुरुक्षेत्र अक्टूबर 1990, पृ॰18

12. Constitution of India, Part 4, 39A, p.13

लेकिन चारों ओर की हालत यह व्यक्त करती है कि आर्थिक न्याय से बहुसंख्यक आम लोग वंचित हैं । योगेन्द्र प्रताप सिंह ने इस विषय की टिप्पणी देते हुए कहा है - "वर्तमान समाज में सामाजिक न्याय का सब से बाधक तत्व विषमता है और वह आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक समस्त सन्दर्भों को प्रभावित किये हुए हैं । आर्थिक दृष्टि से गरीबी तथा समृद्धि के बीच एक गहरी खाई या अन्तराल वर्तमान है, यही अन्तराल हमें शिक्षित और अशिक्षित उच्च शिक्षित एवं अल्प शिक्षित के बीच दिखाई पड़ता है । जैसे गरीबी की रेखा के नीचे इस समय भारत का चालीस प्रतिशत नागरिक जीवन-यापन कर रहा है ठीक उसी प्रकार अशिक्षित की रेखा के नीचे भारत के करोड़ों नागरिक अभी भी ज्ञान के प्रकाश के अभाव में युग और व्यवस्था के बीच अपनी नागरिकता की सही पहचान नहीं कर पा रहे हैं ।"[13] यहाँ की अनिवार्यता ढेर पड़ी संपत्ति को, सुख सुविधाओं को मनुष्य-मनुष्य के बीच वितरण है । इस केलिए भारत के नागरिकों को, चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो, समान रूप से मानने की मनुष्यत्व-भावना पैदा करनी है । यह काम साहित्यकारों का है ।

ऊपर हम ने देख लिया कि हमारे संविधान ने भारत के सभी नागरों केलिए आर्थिक समानता एवं अवसर दिये हैं । गान्धीजी के स्वप्न के भारत में भी राजा, किसान, जाति, धर्म आदि भेद भाव की कल्पना नहीं है । लेकिन स्वतंत्रता-प्राप्ति के 43 वर्ष की लम्बी अवधि के बाद भी यहाँ की औसत जनता की बुनियादी ज़रूरतों - भरपेट भोजन, रहने केलिए कुटिया, नंगेपन छिपाने का चीर - की पूर्ति नहीं हुई हैं । ये सब आज भी उनकी पहुँच के परे हैं । इन के कारणों पर

13· पत्राचार पठ्यक्रम योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ·3, प्र·सं·1985

प्रकाश डालने से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ की समस्यायें अत्यधिक जटिल हो गई हैं । अर्थाभाव की समस्या इस देश की हड्डी तोड रही है । आम जनता भेड-बकरियों के समान जी रही है । अमीर वासना-विलास और आडम्बर में लत हैं । संपन्न वर्गों का विलासमय जीवन देखकर सरकारी कर्मचारी उन्हीं का अनुकरण करने केलिए रिश्वत देते हैं । व्यापारी वर्ग चीज़ों में मिलावट एवं काला बाज़ारी करके धन कमाते हैं । करों की चोरी, महंगाई, चोरी, डकैती, भूखमरी, भिक्षाटन चारित्रिक पतन, ऋणग्रस्तता, भोग-विलास ये सब एक साथ मिलकर वर्तमान समाज विश्लिप्त हो गया है । स्वातंत्र्योत्तर नाटक कारों ने देश की बिगडी हुई आर्थिक स्थिति और उस से उत्पन्न मूल्य विघटन को पूरी सच्चाई के साथ शब्दबद्ध किया है ।

अभाव ग्रस्तता से आहत आम जनता

एक विश्व-व्यापी समस्या बन गई है आज गरीबी । भारत की हालत और दयनीय है । भारत की जनता कई अर्थ श्रेणियों में विभाजित की गई हैं - उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग । उच्च वर्ग ऐसे है जो पेट भर खाया हुआ है सो उँघ जाते हैं । मध्यवर्ग वे होते हैं जिन्हें आधा पेट खाने को मिलते हैं, अतृप्त होते हैं, निम्न वर्ग अक्सर भूखे होते हैं, अधमरे हैं । मध्यवर्ग और निम्न वर्ग समाज में संख्या में अधिक है, उन्हें अपने वश में करने की होड में है अधिकारी और राजनैतिक वर्ग ।

देश की गरीबी और अभाव ग्रस्तता से उत्पन्न विसंगतियों पर लक्ष्मीकान्त वर्मा ने तीखा व्यंग्य किया है अपने नाटक "रोशनी एक नदी" में । नाटक की "कुकुम" की ज़िन्दगी अभाव ग्रस्तता से घिरी हुई है ।

विपन्नावस्था की चरम सीमा में पहुँचे उस के पारिवारिक जीवन में प्रतीक्षा की एक किरण भी नहीं दिखायी पड़ती है । प्रतिदिन जुलूस में भाग लेने के बाद रात को खाली हाथ लौटने वाला पति और भूख सहते-सहते खाली पेट सोनेवाले बच्चों के बीच कुंकुम जिस विवशता को महसूस करती है, वह इन शब्दों में उभर आती है - "मैं रोज़ घर में बच्चों को भूखा सुला देती हूँ, उन्हें समझा देती हूँ कि तेरा बाप इंकुलाब करने गया है, लेकिन रोज़ रात को जब तुम लौटते हो तब तुम्हारे हाथ में इंकुलाब नहीं, सिर्फ एक टूटा हुआ काला डिब्बा होता है, जिस में कुछ नहीं होता ।"[14] अपने घर की अभाव ग्रस्तता से विवश होकर ही वह अपने बच्चों को भी जुलूस में भाग लेने केलिए ले जाती है । हमारे देश में गरीबी से अभिशप्त हज़ारों कुंकुम हैं, जिन की अभाव- ग्रस्तता का खूब लाभ उठानेवाले अर्थ लोलुप ठेकेदार हैं जो गरीबी हटाने की आड में अपनी तिजोरी भरते हैं । ऐसे व्यक्तियों का परिचय भी लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अपने नाटक में दिया है । नाटक की नेतानी जिस ने भारत माता का नारा लगवाने का ठेका ले रखा है, वह गंदी बस्तियों में जाकर बच्चों को जुलूस में ले जाने केलिए तथा हवाई अड्डे पर झण्डे लेकर खड़े रहने केलिए उन्हें किराये में लेती है । ये नेता या नेतानी इतने चालाक हैं कि दो या तीन कौड़ियों की जाल में कुंकुम जैसी बेचारी नारियों को फँसा देते हैं । कुंकुम और उस के पति गरीबी की विवशता से बुरी तरह आक्रांत है, जिन्हें दस किलो गेहूँ तक इकट्ठा खरीदने की नौबत भी नहीं । औरत याद करती है - "आज से तीन साल पहले एक दिन जब मुझे दस किलो गेहूँ खरीदने का सौभाग्य मिला था और मेरे पास गेहूँ लाने का कोई कपड़ा नहीं था, तब मैं ने अपने पति का पान्ट काटकर सिला था, इस दुर्घटना के आज तीन साल हो गये हैं ।"[15]

---

14. रोशनी एक नदी है लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.59, प्र.सं.1974
15. वही, पृ.90

जिन्दगी काटने केलिए अभाव-ग्रस्त व्यक्ति को अनुचित मार्ग अपनाना पड़ता है । गरीबी से तंग आकर वह चोरी करने केलिए बाध्य हो जाता है । "क" नामक पात्र इसी सामाजिक परिस्थिति का शिकार है । "क" की पत्नी बीमार थी । अस्पताल में उस की दवा हो रही थी । डाक्टर ने कहा - दूध पीना है । पत्नी ने कहा कि दूध नहीं पी सकती क्योंकि पैसे नहीं है । डाक्टर ने उसे अस्पताल से दूध दिलवाने की सिफारिश कर दी, दूध मिलने लगा, अस्पताल से दवा और दूध मिलने पर भी वह मर गई । क्योंकि अस्पताल से मिलनेवाले दूध घर के पास के चोकलेट बनाने वाले को बेचता था । उससे इतना पैसा मिलता था कि एक हफ्ते परिवार का खर्च चल सकता था । दूध बेचकर खाना खरीदने केलिए "क" मज़बूर हो जाता है क्यों कि उस के शब्दों में दूध से ज्यादा ज़रूरी खाना था ।"[16]

आर्थिक विषमता के कारण पौष्टिक भोजन की कमी आना, बीमार होना, भूख मरी होना आदि भारत में आज भी चालू है । "सामाजिक न्याय की प्राप्ति - मंजिल अभी दूर है" शीर्षक निबन्ध में "गरीबी रेखा" के नीचे दबती जनता के बारे में स्पष्ट उल्लेख किया गया है - "योजना आयोग के अनुसार यदि ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन पोषक तत्व नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति गरीबी-रेखा के नीचे माना जाएगा । यदि पौष्टिक आहार को रूपयों में परिभाषित किया जाता है तो ग्रामीण क्षेत्रों केलिए 107 रूपए तथा शहरी क्षेत्रों हेतु 122 रूपए प्रति व्यक्ति प्रतिमाह आता है । इस तरह जिन व्यक्तियों का

---

16. रोशनी एक नदी लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.92

उपभोग इस सीमा से कम है उन्हें गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।[17]" ऐसे निम्न आयवाले लोगों केलिए सरकार ने रेषन-वितरण करने का इन्तजाम किया है - "सरकारी वितरण-श्रृंखला रेषन दुकान की ओर से चलाते वितरण क्रम का उद्देश्य आबादी के दुर्बल विभाग के लोगों की भलाई की संरक्षा करना है, ज़रूरी भोजन वस्तुओं - विशेष कर खाद्यान्न की चीज़ें कम दाम पर उन तक पहुँचाना है।[18]"

लक्ष्मीनारायण लाल ने भारत की असली समस्या दर्शाते हुए यह स्पष्ट किया है कि यहाँ की समस्या रोटी की है। "रक्त कमल" में विदेश से शिक्षा प्राप्त कर भारत लौटे कमल को आदर्श युवक के रूप में चित्रित किया है। भारत की हालत का चित्रण कमल ने यों व्यक्त किया है - "जिस देश के सिर्फ पाइन्ट फोर प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहनेवाले हों, शेष नंगी भूखे हों, जहाँ सिर्फ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढे-लिखे हों, शेष गंवार, अन्ध विश्वासी और अचेतन हो - यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं है तो क्या है?[19]" अपने मतों की पुष्टि करते हुए कमल फिर कहते हैं - "अपनी गरीबी में बिलकुल सोया हुआ है हमारा पूरा समाज। इस देश की माँग रोटी है, जिस केलिए पहले देश के बिखरे हुए मन की एकता आवश्यक है।[20]"

---

17. सामाजिक न्याय की प्राप्ति डॉ॰मुन्नीलाल विश्व कर्मा
कुरुक्षेत्र, पृ॰18, अक्टूबर 1990

18. "The public distribution system, functioning through a wide net work of ration/fair price shops, aims primarily at protecting the interest of the vulnerable sections of the population by ensuring the availability of essential commodities, especially food grains at reasonable prices."
Economic Review, 1989. p.17, Published by State Planning Board, Trivandrum,Govt. of Kerala

19. रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ॰30

20. वही, पृ॰34

शंकर शेष ने आर्थिक विषमता के बीच में जकडे हुए ट्रकड्रेवर "फन्दी" की विवशता व्यक्त की है । कैदी "फन्दी" के कान्सर रोग से पीडित पिता का क्रन्दन और घर की अर्थहीनता का चित्रण हृदय भेदक है - "भावान कसम, जिन्दगी बेरहम हो तो हो, मौत भी बेरहम हो गई थी

और उस दिन शाम को फन्दी लौट रहा था । रास्ते में "खान" ने उस की छाती पर डंडा तानकर उस की बेइज्जती की । घर आते ही औरत ने चिल्ला कर एलान किया कि 'घर में चावल नहीं है, उसके पुत्तू को पडोस के लडकों ने मारा उस की नाक से खून बह रहा था । बाप ने कदम रखते ही पूछा - "बेटा आज इन्जेक्शन लगेगा ।" फन्दी ने "नहीं" । बस फन्दी का बाप उस के पैरों से लिपट कर रोने लगा । "बेटा, इंजक्शन दो या मौत ।" योर औनर, फन्दी इन्जेक्शन नहीं दे सकता था, पर मौत तो दे ही सकता था । फन्दी का हाथ न जाने कैसे अपने बाप के गले की ओर बढ गया । उसकी अंगुलियाँ न जाने कैसे उसके गले को कसने लगी आती हुई मौत को देखकर भी फन्दी का बाप हँस रहा था, जैसे उसे मनचाही मुराद मिल रही हो[21] ।"

गरीबी से विवश हो, आत्महत्या करने की हालत तक पहुँची जनता वर्तमान भारत में है । मुख्यमंत्री, कृषिमंत्री, नेता लोग सब मिलकर "गरीबन पुरवा" ग्रामवासियों के सामने भाषण देने की घटना सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने "अब गरीबी हटाओ" में दिखायी है । उन ग्रामवासियों के सामने भाषण देने की घटना सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "अब गरीबी हटाओ" में दिखायी है । उस ग्राम के लोगों में अधिकांश हरिजन है । इसलिए हरिजनों की प्रशंसा करते हुए मुख्य मंत्री ने भाषण शुरू किया । तब एक औरत लायी जाती है । उस औरत के बारे में

---

21. फन्दी - शंकर शेष, पृ.26, पराग प्रकाशन, दिल्ली (सं.1982)

ग्रामीणों में एक ने कहा - "यह औरत दो बच्चों के साथ कुए" में कूद रही थी, हम लोगन ने पकड लिया भूखी मर रही थी, कहीं काम नहीं मिलता इसे, न खेत में न सड्क पर ···· ।"[22] यहाँ शासक बदल बदल कर आते रहते हैं, पर गरीबी का अन्त नहीं होता है । राज शासन, का प्रजाशासन में परिवर्तित होने पर भी आम जनता गरीबी में ही कट रही है । नेताजी आकर नट से अपने अनुकूल नाटक खेलने कहता है तो नट का यह कथन कितना सच है - "राजतंत्र और लोक तंत्र दोनों को हम देख चुके । सब ने अपना मतलब साधा है । अब गरीबी हटाने का यही तरीका रह गया है, सब गरीब मिलकर अपनी गरीबी हटायें ।"[23] ऊपर हम ने देख लिया कि आम जनता आज भी गरीबी से पीडित है । उन की भूख मिटाने वाला नेता अभी तक प्रत्यक्ष नहीं हुए हैं ।

कलाकार की ज़िन्दगी में जो अभाव ग्रस्तता है वह उसकी सृजनात्मकता में बाधा उपस्थित करती है । एक निश्चित आमदनी के अभाव में घर के कामकाजों को संभालने में घरवालों की ज़रूरतों की पूर्ति करने में कलाकार अक्सर असमर्थ निकलता है । यह दुविधात्मक स्थिति कलाकार केलिए सब से बडी अभिशाप बन जाती है कि एक ओर गृहस्वामी के नाते अपने घरवालों के प्रति अपने दायित्व को निभाना है । दूसरी ओर एक कलाकार की हैसियत से अपनी कला के प्रति ईमान्दारी बरतनी है । भीष्म साहनी के "हानूश" को ऐसी संकटपूर्ण स्थिति से गुजरना पडा । हानूश अपनी पत्नी "कात्या" और बेटी "यान्का" केलिए दो जून रोटी का प्रबन्ध करने में भी असमर्थ निकलता है । दस साल से घर की अभावग्रस्तता से कात्या दम घुट रही है । ठीक इलाज न दे सकने के कारण

22· अब गरीबी हटाओ सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ·28, प्र·सं·1981
23· वही, पृ·62

उस का बेटा सर्दी में ठिठुर कर मर गया । अपने बच्चों के पालन पोषण केलिए कात्या अपने कपडे और गहने सब बेचती है । घर का चूल्हा एकाध ही जलता है । बेटी को पहनने केलिए चिथडा ही है । पडोसियों से लकडी की खपच्चियाँ माग माग कर आग जलाती है । दरिद्रता की तीव्रता के कारण कात्या वक्त के पहले बूढी हो जाती है । यह तो स्वाभाविक है कि घर का बोझ खुद ढोनेवाली औरत के मन में अहिस्ता अहिस्ता अपने मर्द के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वह अपने पति की बेइज्जत करने से भी नहीं हिचकती - "उस में पतिवाली कोई बात हो तो मैं उस की इज्जत करूँ, जो आदमी अपने परिवार का पेट नहीं पाल सकता उसकी इज्जत कौन औरत करेगी ।"[24]

कोणार्क के निर्माण में लगे रहनेवाले शिल्पियों ने पत्थर के टुकडों पर रसिक-जोडों की सृष्टि की । लेकिन नई पीढी के प्रतिनिधि धर्मपद की आँखें उस ओर जाती नहीं है । नई पीढी के इस परिवर्तित दृष्टिकोण को जगदीश चन्द्र माथुर ने स्पष्ट किया है । परिश्रम करनेवाले देश के लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करता हुआ धर्मपद का कथन ऐसा है - "जब मैं इन मूर्तियों में बंधे रसिक जोडों को देखता हूँ, तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरुद्ध नौका को खेनेवाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाडी लेकर खटनेवाले लकडहारों की । इन के बिना जीवन अधूरा है आचार्य ।"[25]

24· हानूश भीष्मसाहनी, पृ·11

25· जोणार्क जगदीशचन्द्र माथुर, पृ·34 (पंचम सं·1983)

लक्ष्मीनारायण लाल ने "अब्दुल्ला दीवाना" के द्वारा हमारे जीवन में आयी अर्थहीनता, कायरता और भाकुकता को दर्शाया है । एक महारोग हमारे देश को ग्रसित है । वह है दिखाने केलिए आदर्शवाद, अध्यात्मवाद पर व्यवहार में अवसरवाद - यही है रोग की जड । "अब हम ने अपनी सारी समस्याओं की जड गरीबी को ही मान लिया है । पहले हमारी सब समस्याओं की जड गुलामी थी, [26]। अब्दुल्ला का कृतिकार स्पष्ट कर रहा है कि यहाँ कोई गरीबी हटाना नहीं चाहता था । किसी को भी, और विशेष कर राजनीतिज्ञों को, गरीबी की पर्वाह नहीं है । तत्काल स्वार्थ सिद्धि और अधिकार के अतिरिक्त किसी का कोई ध्येय नहीं है । भारत में गरीबी का समाधान अभी तक नहीं हुआ है । होना असंभव भी है क्यों कि राजनैतिक नेता, पुलिस आदि छोटी पूँजी को बडी करने में लगे हुए हैं । "आम आदमी की आवाज़ मात्र वोट देना रह गई है, जिस में कोई शक्ति नहीं है, वह व्यक्ति से वोट होकर रह गया है, सत्ताधारियों के निर्णय को, न्याय के निष्पक्ष न होने पर वह कहीं ललकार भी नहीं सकता [27]।"

वर्तमान अर्थ व्यवस्था दोषपूर्ण है । यहाँ अमीर और भी अमीर बनता है और गरीब और भी गरीब बनता जा रहा है । अमीर और गरीब में स्वर्ग-पाताल का अन्तर है । इस खाई का विश्लेषण "रक्त कमल" के कमल ने किया है । अमीर लोग गलत राहों पर चलने से ही और अमीर बनते दिखाई देते हैं । कमल ने यह मत साफ व्यक्त किया है - "मेरा दु:ख-दर्द है इतिहास के उस अध्याय से, उस मोड से,

---

26· अब्दुल्ला दीवाना लक्ष्मीनारायण लाल, भूमिका, पृ·15,16

27· वही, पृ·18

जहाँ उसने मनुष्य को मनुष्य से बाँट दिया, कोई धनी से और अधिक धनी होता गया, कोई गरीब से अधिक गरीब हो गया ....[28]।" धनवान और गरीब दो श्रेणियों में बँट गये हैं। धन की रक्षा करने केलिए, नंगी-भूखे आम आदमियों से अपने को दूर रखने केलिए अमीर लोगों को पहरूए या गुण्डे रखने पड़ते रहें। कमल ने यहाँ अपना विचार व्यक्त किया है - "भाई साहब, सोचिए हमारे समाज में यह गुण्डा, डाकू आये - कहाँ से ? यह धन की रक्षा के नाम पर हमारे समाज में दाखिल हुआ - पहरुआ, दरबान और तकाज़ेदार के रूप में।[29]"

ज्ञानदेव अग्नि होत्री ने शुतुर मुर्ग में गरीबी से पीड़ित आम जनता का यथार्थ चित्रण किया है। शुतुर नगरी के राजा स्वर्ण निर्मित शुतुरमुर्ग की स्थापना केलिए रुपए खर्च कर रहे हैं। आम जनता भूख प्यास से तड़प रही है। स्वर्ण-प्रतिष्ठा के विरुद्ध जनता भोजन केलिए शोर मचाते हैं। जनता की मांगों को अनसुनी करके राजा "भूख-समस्या पर रिपोर्ट तैयार करा रहा है। लेकिन रिपोर्ट के पहले जनता को भोजन चाहिए। जनता की मांगें शासक के सामने पेश करनेवाला विरोधीलाल बोलता है - "हमें दो जून का भोजन चाहिए। फिर तन ढंकने को कपड़ा और रहने को छोटा-सा घर।[30]

बेइनसाफी करने के बावजूद भी अमीर लोग सिक्कों की खनक से कानून के हाथ से बच निकलते हैं। आज देश की कानूनी संस्था भी एक मकड़ी के जाल के समान है। छोटा प्राणी ही उस में फंसता है, बड़ा प्राणी बच निकलता है। कानून की इस विसंगत नज़र की ओर संकेत करते हुए हरिशंकर परसाई ने उस पर करारी चोट की है -

---

28. रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.109
29. वही, पृ.110
30. शुतुरमुर्ग ज्ञान देव अग्निहोत्री, पृ.45

जब गेहूँ के निर्यात पर प्रतिबंध था, एक जून का आटा अंगोछी में बाँधकर चलनेवाले किसान को सजा हो जाती थी, और उधर हजारों बोरे गेहूँ रातों रात सीमा पार हो जाता था, काले बाज़ार में । न्याय को अन्धा कहा गया है, मैं समझता हूँ न्याय अन्धा नहीं, करना है, एक ही तरफ देख पाता है ।"[31]

मोहन राकेश ने "आधे अधूरे" की सावित्री के घर की दुर्दशा दिखायी है । सावित्री के पति बेकाम घर पर बैठता है । पुत्र भी नौकरी करने नहीं जाता है । सावित्री की आय से ही घर संभलता है । उस की छोटी लड़की स्कूल से लौटकर माता से शिकायत करती है - "स्कूल में भूख लगे, तो कोई पैसा नहीं होता पास में, और घर आने पर घटा-घटा दूध ही नहीं होता ····, और तुमने कहा था, विलप और मोज़े इस हफ्ते ज़रूर आ जाएगी, आ गए हैं ? कितनी शरम आती है मुझे फटे मोज़े पहन कर स्कूल जाते ।"[32] सावित्री ऊपर से देखने पर सजधज कर चलती है । लेकिन युवावस्था तक पहुँची उस की लड़की को स्कूल में भोजन देने और अच्छे कपडे पहना कर भेजने में अर्थाभाव के कारण विवश हो गई है । अर्थाभाव से घर को बचाने केलिए निकली सावित्री अपने जीवन का नियंत्रण खोकर इधर उधर भटकती है । परिवार संचालन के उद्देश्य से वह नौकरी करती है । बडे बडे अफसरों को अपने घर बुलाकर दावत देती है । सावित्री स्वयं कहती है - "अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ सम्बन्ध बनाकर रखना चाहती हूँ, तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों केलिए ।"[33] सावित्री के पुत्र को नौकरी की सिफारिश कराने के उद्देश्य से सावित्री यह सब करती है तो अन्त में वह कहीं नहीं पहुँचती है ।

---

31. आधुनिक निबन्धावली - सम्पादक विद्यानिवास मिश्र, पृ.103
32. आधे अधूरे = मोहन राकेश, पृ.35,37
33. वही, पृ.62

उपेन्द्रनाथ अश्क ने "अंधी गली" में अपने बाल-बच्चों के पालन पोषण में तंगी अनुभव करनेवाले पति-पत्नी का चित्रण किया है। मासिक वेतन पानेवाला कौल आय और व्यय में असमानता पाकर मुसीबत से दिन काट रहा है। बच्चे माता के पास जाकर कपडे की फटी हालत, जूते की सिलाई आदि कई शिकायतें करती हैं। उन्हें नये चप्पल और जूते की ज़रूरत है। श्रीमती कौल बच्चों के फटे जूते की शिकायत करती है तो कौल अपनी हालत यों व्यक्त करता है - "यह मेरा जूता देखती हो, छठी बार तला लगवाया है कल। और मुझे दस बार भी लगवाने पडे तो मैं शौक से लगवाऊँगा। नया जूता पच्चीस से कम में हाथ में नहीं आता। पच्चीस में भी वह आता है, जिस के छः महीने में फुमडे उड जाते हैं।"[34] भारत की स्वतंत्रता आज भी आम आदमियों तक नहीं पहुँची है। भोजन, कपडा आदि पाने में आज भी भारतीय असमर्थ है। आर्थिक विषमता से लोग विवश हैं। स्वतंत्रता-संग्राम-समय के हमारे नेताओं के वादे असफल हो गये हैं। "अंधी गली" का ही "श्याम" इस सत्य की ओर इशारा करता हुआ कहता है - "जब हम आजादी केलिए लड रहे थे तो हमारा नारा था कि आज़ादी किसान-मज़दूर की होगी, बडे बडे कारखाने सरकार ले लेगी, बोलियों के अनुसार सूबे बनाये जायेंगी, ज़मीन्दारियां नष्ट कर दी जाएगी। अब हर बात केलिए बहाने बनाये जा रहे हैं। कमीशन ज्यादा बैठते हैं, काम कम सिरे चढते हैं। स्कीमें ज्यादा बनती हैं, अमल में कम आती है। वही बहाने बनाये जा रहे हैं, तो अंग्रेज़ बनाते थे।"[35]

---

34. अन्धी गली उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 15 (प्र.सं. 1956)

35. वही, पृ. 39

रोज़ी रोटी की तलाश

अर्थाभाव पर विचार करते समय आबादी की वृद्धि पर सोचे बिना नहीं रह सकता । भारत प्रगति के पथ पर चल रही है अवश्य । पंचवर्षीय योजनाओं से भारत में कृषि के क्षेत्र में प्रगति हुई है । कारखानाओं की संख्या में बढती हुई है । चिकित्सा के क्षेत्र में काफी वृद्धि होने से मरण-संख्या कम हुई है । भारत-भूमि का विस्तार नहीं होता है, पर जन-संख्या की वृद्धि बहुत अधिक हुई है ।

"भारत में 1980 की जनसंख्या के अनुसार कुल आबादी के 14·08 प्रतिशत चार साल की उम्र से नीचे के शिशु हैं, 25·59 प्रतिशत 5 साल से चौदह साल तक के विद्यार्थी हैं, 54·85 प्रतिशत 15 से 59 वर्ष तक के हैं, 5·48 प्रतिशत 60 वर्ष से ऊपर वाले हैं[36]।" ऊपर की तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंद्रह से उनसठ तक के उम्रवाले उत्पादन क्षमता रखनेवाले हैं जो जन संख्या के आधे से ज्यादा हैं । बेकारी की समस्या इन्हीं को अधिक है । शिक्षित होते हुए भी, नौकरी न मिलने के कारण, निराशामय जीवन बिताने को बाध्य हुए बहुसंख्यक युवक युवतियों की समस्यायें विविध प्रकार से आर्थिक समस्या में प्रतिफलित हैं।

---

36. "In India, 14.08 per cent of the population is below 4 years, 25.59 per cent between 5-14 years, 54.85 per cent between 15.59 years and only 5.48 percent above 60 years, in 1980."

Social Change in India : B. Kuppuswamy, p.99
Edition 1989 - Vikas publishing house Pvt.Ltd.
New Delhi.

आबादी की वृद्धि से जो समस्या देश में है, उससे बडी समस्या है बेकारी की । विशाल भारत में, हमारे बेकार युवकों को काम करने को अवसर दिलाने पर पैदावार की वृद्धि होगी और हम विश्व के संपन्न देशों में बन सकते हैं । लेकिन यहाँ की हालत ऐसी नहीं है । "बेरोजगारी - एक ज्वलन्त समस्या" के बारे में गोपाल लाल का मत गरीबी और बेकारी पर प्रकाश डालते हैं - "आज रोज़ी रोटी की समस्या तथा उस का समाधान देश की सरकार के सामने भी एक बडी कठिन चुनौती है । बढती आबादी ने इस समस्या को और अधिक जटिल और कठिन बनाने में आग में घी का काम किया । दुनिया में सब से बडा प्रजातान्त्रिक राष्ट्र होने का दंभ भरने वाले देश में आखिर कब तक इस समस्या की ओर अधिक अन्देखा रखा जाएगा । अब शायद झूठी दीग हाकनेवालों की चलनेवाली नहीं, क्योंकि जो हाथ ईश्वर ने इन्सान को रोज़ी-रोटी केलिए दिये हैं, उनका इस्तेमाल अवश्यंभावी हैं .... ।"[37]

लक्ष्मीकान्त वर्मा की "ठहरी हुई ज़िन्दगी" में बेकारी, अभाव ग्रस्तता, भूख आदि से संत्रस्त कई पात्र हैं । बेकारी से बुरी तरह आहत युवक "राम लीला" में राम की भूमिका अदा करता है पैसे केलिए अभिनय के बीच में उस की सिगरेट पीने की प्रवृत्ति पर मन्दोदरी व्यंग्य करती है । उस का उत्तर है - "जिस का पेट भरा रहता है, वह सिगरट नहीं पीता, लेकिन जो भूखा है, भूख से जिस की आंतें ऐठी है वह हवा से लेकर सिगरट तक पीता - मैं इस की दरिद्रता हूँ, उसकी टूटी आकांक्षाओं और फटे स्वप्नों का प्रतिनिधि हूँ, मेरा एक टूटा मुकुट यह फटा पीताम्बर, यह नकली गहनों का मटमैला श्रृंगार इस युग का है, मैं ने इस लीला में भाग लेने का निर्णय सात उपवासों के बाद लिया है,

---

37. बेरोजगारी - एक ज्वलन्त समस्या गोपाल लाल
- कुरुक्षेत्र, पृ.46, जून 1990

मुझे आज इस अभिनय के बाद पेट-भर भोजन मिलेगा ।[38]

वृजमोहन शाह ने त्रिशंकु में विश्व विद्यालय और बेकारीके मध्य त्रिशंकु के समान लटके हुए एक युवक को प्रस्तुत किया है । पोस्ट ग्रेजुएट डिग्रीधारी युवक बहुत कुछ करना चाह कर भी स्थायित्व के अभाव में कुछ नहीं कर पाता और उसे अपनी महत्वाकांक्षाओं के बदले निराशा ही हाथ लगती है । अत: यह नाटक आज के उस प्रत्येक युवक का नाटक है, शिक्षित और बेकार होने के कारणजिस की स्थिति त्रिशंकु जैसी बनी है । नौकरी की खोज में निकला युवक जीविका चलाने केलिए किसी भी नौकरी को पाने की इच्छा करता है । क्लर्क की नौकरी केलिए गया तो अफसर का कथन ऐसा है - "मुझे पोस्ट ग्रेजुवेट क्लर्क की ज़रूरत नहीं है ।" लड़का काबिल है, पर मैं इसे नहीं रख सकता क्योंकि मुझे अपने दोस्तों व रिश्तेदारों और मिनिस्टरों के भाई-भतीजों को खपाना है, जो गधे हैं, जबकि आफीस में पहले ही सरप्लस स्टाफ है ।[39]

बसेरे की तलाश -

रोज़ी-रोटी की खोज के साथ साथ बसेरे की खोज भी आदमी केलिए एक समस्या बन चुकी है । इसका एक दूसरा पहलू भी है, गाँवों और शहरों में आम जनता गरीब हैं । उन केलिए जमीन और मकान नहीं है । कई छोटे बडे मकान ताला लगाये पडे हैं जिन में छिपकली, मकडी, गिरगिट, चींटी, खटमल, झींक, तेलचट्टा, साँप, चूहे आदि रहते हैं । महलों के चारों ओर किला-सदृश दीवार बनाकर, दर्जनों कुत्ते पालकर अमीर लोग रहते हैं तो सड़क पर स्वतंत्र-भारत के "वोटर" धूप, वर्षा सहकर, खाना पकाकर, खाते-पीते सोते जागते हैं ।

---

38. ठहरी हुई जिन्दगी लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.37,47

39. त्रिशंकु वृजमोहनशाह, पृ.59-60 (तृ.सं.1982)

यहाँ मनुष्यत्वहीन एक अमीर-पीढी रहती हैं । ऐसी हालत पर लक्ष्मी नारायणलाल ने व्यंग्य किया है - "जिस देश के सिर्फ पोइन्ट फोर प्रतिशत आदमी धनी हों, शेष सब गरीब हों, जिस समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहनेवाले हों, शेष नंगे भूखे हो यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं है तो क्या ?"[40]

शंकरशेष ने अपने नाटक "तिल का ताड" में शहरों और नगरों में मौजूद आवास स्थान की पेचीदी समस्या को उठाया है । नाटक कार ने ही दिखाया है कि शहरों में नौकरी करने केलिए आनेवाले लोग आवास-स्थान का प्रबन्ध करने में बहुत कठिनाई महसूस करते हैं । मकान मालिक धन्नामल अविवाहितों को मकान नहीं देनेवाला है । प्राणनाथ से उस का कहना इस का प्रमाण है - "कुंवारे और रंडवों को घर देना आस्तीन में साँप पालना है । आप मुझे पिछले साल से बना रहे हैं, कल शाम तक आपकी बीबी नहीं आयी तो परसों आप मकान छोडिये .....[41]।" मकान मालिक की शर्तें मानने केलिए मालिक के सामने झूठ बोलने केलिए विवश प्राणनाथ की विवशता शहरों और नगरों में रहनेवाले किरायेदारों की विवशता है । अविवाहित को मकान किराये में देने से इनकार करनेवाले मकान मालिक के सामने अपने को शादीशुदा पुरुष के रूप में अपना परिचय प्राणनाथ ने दिया था । यहाँ तक कि एक अज्ञात युवति मंजु को घर में सहारा देकर मालिक से उसका परिचय पत्नी के रूप में देता है । मंजु को लायी पहली रात ही, मकानमालिक ने किराये में दस रूपये की वृद्धि करके कहा - "चलो, अच्छा हुआ, अब आप शौक से रहिये मेरे घर में, पर अब किराया दस रूपया और दीजिए ।"

"अब तक आप अकेले थे । अब दो आदमी इस घर का उपयोग करेंगे और सुनिए हमारे नियम के अनुसार फी बच्चा 5 रूपया किराया

---

40. रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.30 (1962)

41. तिल का ताड शंकर शेष, पृ.10, प्र.सं.1990

बढता है .....[42]।"

अर्थ के पीछे अन्धी दौड

अनैतिक राहों से होकर धन कमाने केलिए साझ से सबेरे तक भाग दौड करनेवाली एक नई पीढी स्वतंत्र भारत का अभिशाप है । धनार्जन में नीति-अनीति, पाप-पुण्य, भलाई-बुराई, धर्म-अधर्म का विचार ये नहीं रखते हैं । इसलिए आज मानव-रिश्तों में परिवर्तन आया है । अर्थ केन्द्रित जीवन-मूल्य पनपने लगा जिस बीच पति-पत्नी नाते में, पिता-पुत्र नाते में, भाई-भाई सम्बन्ध में हेरफेर हो गया ।

निरन्तर बढती जा रही महंगाई भारत की आम जनता की कमर तोडती है । अल्प-आयवाले सरकारी नौकर, मज़दूर आदि महीने के आरंभिक और अन्तिम तिथियों को आपस में मिलाने में असमर्थ हैं ।

महंगाई से बचने केलिए कुछ लोग रिश्वत लेते हैं । ऐशो आराम की जिन्दगी के मोह में पडी पत्नी की प्रेरणा से घूस लेने को विवश "राजन" का परिचय "लाल ने "मास्टर अभिमन्यु" में किया है । बेवफादार दुनियाँ में जीते जीते इमानदार राजन ने भी भ्रष्टाचार की सबक खूब सीख ली, उस ने दुनिया के साथ चलने का निश्चय किया "हमें दुनिया भर से क्या मतलब ! हमें चुपचाप आँखें मूंदे अपने रास्ते पर चले जाना है । कमिश्नर की "बेसिक में" ढाई हज़ार से शुरू होती है । इन्हें कम से कम ज्वाइंट सेक्रेटरी तक पहुंचना है । साढे तीन हज़ार तनख्वाह पर पहुंचकर ये रिटयर्ड होंगे । तब तक कम से कम ढाई लाख हमारा

---

42. तिल का ताड शंकर शेष, पृ.15

प्रोविडेन्ट फंड होगा । इन्हें सात सौ रुपए महीने पेंशन मिलेगी, आप जानते हैं रिटॅयर्ड होने के बाद कोई घर पर नहीं बैठता । यह किसी फर्म में एक्सीक्यूटीव डयरेक्टर, किसी बोर्ड के फाइनेंस एड्वाइज़र नहीं तो किसी यूनिवर्सिटी के वायस चान्सलर ।"[43] राजेन्द्र कुमार वर्मा से हमारी भेंट होती है । रिश्वत लेनेवाले अपने पति के सम्बन्ध में पत्नी का कथन बिलकुल ठीक है - "यह तुम्हारे धर्म की कीमत है, तुम्हारे ईमान का मूल्य है, तुम्हें अपने कर्तव्य से हटाने की फीस है ।"[44] "चिराग की लौ" का इन्कम टैक्स अफसर इसलिए घूस नहीं लेता है कि वह ईमान बेचने के समान है[45] ।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने "न्याय की रात" के हेमन्त के माध्यम से यह व्यक्त किया है कि वह धन कमाने में विश्व में प्रचलित सभी अनैतिक राह अपनाता है । रिश्वत, शराब, महिला, हत्या आदि सभी कुछ उन में है । अपनी बहन का बार बार उपदेश सुनने पर भी हेमन्त अनैतिक राहों से ही चलता है । हेमन्त की नौकरी के बारे में बहनोई के पूछने पर दिये जानेवाला जवाब इस का दृष्टान्त है - "मेरा पेशा है, बेईमान व्यक्तियों केलिए परमिटों का इन्तजाम करना, बेईमान और लालची व्यवसाय पतियों को बडे-बडे ठेके दिलवाना और यह सब मैं कर पाता हूँ, ऊँचे ओहदों पर विद्यमान कुछ बेईमान और विश्वास घाती सरकारी अफसरों की सहायता से ..... ।"[46]

---

43. मिस्टर अभिमन्यु - लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.67-68
44. अपनी कमाई - राजेन्द्रकुमार शर्मा, पृ.84
45. चिराग की लौ - रेक्ती सरनशर्मा, पृ.31
46. न्याय की रात - चन्द्र गुप्त विद्यालंकार, पृ.108

"यक्ष प्रश्न"का नेता "वर्मा" भी ऐसा अन्यायों का समर्थक है । अपनी कमाई का रहस्योद्घाटन करते हुए देव से वह कहता है - "मेरेलिए कमाई यह रह गई थी कि मैं दूसरों की कमाई का शोषण करूँ । नीचे से ऊपर चढते जहाँ पहुँचा था वहाँ इतनी कम जगह थी कि दूसरों को नीचे गिराकर ही मैं वहाँ खडा रह सकता था । उतने ऊपर से नीचे लोगों को देखना संभव नहीं था ।"[47]

अपनी स्वार्थ-सिद्धि केलिए आम जनता का शोषण करके मोटे बनने वाले नेता लोगों का उदाहरण "रक्त कमल" में मिलता है । महावीर से कमल कहता है - "आदमी अपने घोर सत्य का मुकाबला नहीं कर पाता । वह अपने से भागकर किसी असत्य में शरण लेता है । लीडर देश की जनता को मूर्ख बनाकर हमारा नेता बनता है । उद्योगपति समाज का शोषण कर राष्ट्रसेवी धर्म-सेवी का चेहरा बाँधता है और शेष सब उसे उदास देखते रह जाते हैं - साहित्यकार, विचारक, अध्यापक, पत्रकार और वकील ।"[48]

"तिल का ताड" का "बनारसीदास" खून के रुपए को ऊपरी आमदनी मानता है । अपनी पुत्री रंजना की शादी इंजिनियर प्राणनाथ के साथ चलाने को बनारसीदास बहुत चाहता है । रंजना होटलों में प्राणनाथ के साथ गई हुई, विवाह के पहले कई बार । हलवा, ओम-प्लेट आदि अन्य पुरुष के साथ विवाह के पूर्व रंजना के खाने पर भी बनारसीदास को कोई एतराज नहीं है । शादी-सम्बन्धी चर्चा केलिए आते समय प्राणनाथ से बातचीत के बीच बनारसीदास ने रिश्वत के बारे में अपना यह विचार व्यक्त किया - "आजकल ऊपरी आमदनी ही तो

---

47. यक्ष प्रश्न लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.83 (प्र.सं.1981)
48. रक्त कमल लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.30, सं.1962)

असली भीतरी आमदनी है । तनख्वाह तो लोटा-भर पानी है, प्यास बुझाने केलिए भी काफी नहीं, पर यह ऊपरी आमदनी ? इसे तो त्रिवेणी संगम समझिए अथाह पानी-बहता हुआ पानी । आजकल की दुनिया में तनख्वाह नहीं देखी जाती, देखी जाती है ऊपरी आमदनी को ठुकराना अच्छा नहीं हमेशा दुनिया के साथ चलो । दुनिया बेईमानी करे और तुम थोडी ईमानदारी करो तो तुम्हें कोई ईसा या गाँधी कहकर पूजनेवाला नहीं है ।"[49] "चिन्दियों की एक झालर" का मंगल ईमानदार और निस्वार्थ नन्दन का पुत्र है । स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिये नन्दन का पुत्र मंगल भौतिकता केलिए, सुख केलिए, दौडता है । अपने पिता के श्रेष्ठ मूल्यों का तिरस्कार करते हुए मंगल धन-दौलत, ऐशो-आराम को सब कुछ मानता हुआ कहता है - "मैं तो दुनिया के साथ दौडूँगा ठीक उसी तरह जैसे दुनियाँ दौडती है ठीक उन्हीं चीज़ों केलिए जिन केलिए दुनियाँ दौडती हैं रुपया, पैसा, मोटर-बंगला शराब औरतें ·····[50] ।" हमारी प्राचीन संस्कृति पर, प्राचीन आदर्शों पर अटल रहे पुराने नेताओं के पुत्रों का उन सभी मूल्यों का तिरस्कार करने का उदाहरण इस नाटक में मिलता है । नन्दन के आदर्श से पुत्र के जीवन में कोई उन्नति नहीं हुई है । जीने केलिए कठिन यातनायें झेलने केलिए मजबूर बना वह युवक अपने आदर्शवान पिता के मार्ग से हटने को इसलिए तत्पर हैं । अनैतिक राह से कमाते धन के भविष्य को सूचित करते हुए नन्दन अपने पुत्र से कहता है - "एक दिन सभी कुछ राख हो जाता है मंगल, लेकिन खुद से जलकर राख हो जाने में भी कुछ मज़ा है, जो दूसरों को बताया नहीं जा सकता[51] ।"

49· तिल का ताड शंकरशेष, पृ·41-42

50· चिन्दियों की एक झालर अमृतराय, पृ·86, प्र·सं·1969

51· वही, पृ·87

व्यापार के रूप में शिक्षा-संस्थायें चलाकर रूपये कमाने का कार्य वर्तमान युग की खूबी है । जनता को शिक्षित करने के महान उद्देश्य से पुराने ज़माने में शिक्षा-संस्थाएँ चलाती आयी थी । लेकिन आज अन्य किसी व्यापार से यह दुकान मुनाफेदार है । शंकरशेष ने अपनी लेखनी इस सत्य के प्रकाशनार्थ चलायी है । अरविन्द आचार्य के अन्यायपूर्ण व्यवहारों की कटु आलोचना करते हुए लीला से कहता है - "उस कमीने आदमी ने दूकानों की तरह बीस शिक्षण संस्थायें खोल रखी हैं । साथ ही लेन-देन का व्यापार करता है । शिक्षा-संस्थाओं के लाखों रूपए ग्रांट का उपयोग यह शिक्षा-शास्त्री अपने लेन-देन के व्यवसाय में करता है । इस पूँजी से हज़ारों रूपए कमाकर कालेज को लौटा देता है । यह धन्या जाने कितने वर्षों से चलता रहा है ।"[52] शिक्षा-संस्थाएँ धन कमाने के एक माध्यम के रूप में भारत-भर में फैल गयी हैं । नाटक में हम देखते हैं कि आचार्य द्रोणाचार्य अपनी योग्यता तथा विद्वत्ता को सत्ता के हाथों गिरवी रखकर सत्ता की विसंगतियों से समझौता करता है । उसने अपनी पत्नी कृपी और पुत्र अश्वत्थामा के सुख केलिए अपना अस्तित्व नष्ट किया है । अपनी आर्थिक पराधीनता से बचने केलिए ही गुरु ने ऐसा किया था । नाटक का अरविन्द भी आर्थिक विवशता से बचने केलिए पत्नी लीला के उपदेशानुसार कालेज के व्यवस्थापक के साथ रहता है । आधुनिक द्रोणाचार्य प्रोफेसर अरविन्द सत्ता और व्यवस्था द्वारा पोषित अध्यापक है । पत्नी के कहने के अनुसार परीक्षा में पराजित छात्र सिन्हा से रूपए प्राप्त कर के प्रो॰अरविन्द ने उसे विजय तिलक लगाया ।

52॰ एक और द्रोणाचार्य शंकर शेष, पृ॰75, च॰सं॰1983

शास्त्र के पुत्र अर्जुन को बडा दिखाने केलिए द्रोणाचार्य ने अनार्य एकलव्य से गुरुदक्षिणा के रूप में अंगूठा मागा, और अंगूठा पाकर एकलव्य को प्रतिभाहीन बनाया । उसी प्रकार द्रोणाचार्य अपने राजकीय सुख को बनाये रखने केलिए प्रतिभावान छात्र कर्ण को सूतपुत्र कहकर हंसी उडाता है । इस मिथकीय कथा के प्रतीकात्मक प्रयोग द्वारा नाटककार ने वर्तमानयुग के शिक्षा शास्त्री अरविन्द के अन्यायों की ओर इशारा किया है। प्रसिडेन्ट के पुत्र राजकुमार के द्वारा परीक्षा में नकल करते वक्त प्रो॰ अरविन्द को आँखें मूँद करनी पड़ती है एवं पुरस्कार रूप में प्रिन्सिपल पद स्वीकार करने पडता है । उसी राजकुमार के द्वारा कालेज की छात्रा अनुराधा बलात्कार की जाती है । तब भी प्रो॰अरविन्द को आँख बन्द करनी पडती है । याने अध्यापक अपने आर्थिक अभावों की पूर्ति एवं सम्मान केलिए सत्ता के साथ समझौता कर के न्याय बदल देने के भागीदार के रूप में आज काम करते हैं ।

कला के क्षेत्र में व्यावसायिक रुख से प्रवर्तन करनेवाले स्वार्थी लोगों की संख्या वर्तमान समाज में दर्शनीय है । कला नैसर्गिक होने पर भी उसे पनपने केलिए अनुकूल परिस्थितियां अनिवार्य है । कलाकार की साधना का परिणाम होता है कला की पूर्ति । भीष्मसाहनी के नाटक "हानूश" का हानूश ताला बनानेवाला एक साधारण कुण्डसाज है । घडी बनाने की चाहने अपने मन को पल्लवित किया । कई सालों के परिश्रम से वह घडी बना पाया । लेकिन उस की बीबी, पुत्री सब को भूखों से पीडित करके ही उस की विजय हुई थी । कला के प्रति कुछ लोगों का रुख स्वार्थपूर्ण है ।

व्यापारी वर्ग घड़ी की स्थापना नगरपालिका में करना चाहते हैं । बादशाह के द्वारा घड़ी का उद्घाटन कराने पर सौदागार केलिए अपनी चीज़ों की बिक्री बढ़ाने की चिन्ता है । सुदूर जगहों से लोगों के आने की प्रतीक्षा और अपनी दुकानों की ठाटबाट दिखाने का अवसर दोनों वे चाहते हैं । उन का लक्ष्य व्यापार की बढ़ती है । एक व्यापारी का वचन यों है - "हमें घड़ी की नुमाइश से नहीं मुनाफे से मतलब है ।"[53] कला के प्रति सत्ता भी अन्याय करता है । सत्रह सालों के निरन्तर परिश्रम से बन गयी थी घड़ी । पर कलाकार के अन्धेपन का कारण भी वह कलाकृति बनी । निरंकुश, स्वार्थ सत्ता के सामने वह गरीब, सरल समर्पित कलाकार कुछ नहीं कर सका ।

डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल ने "सुन्दर-रस" के द्वारा सुन्दररस-निर्माता एवं विक्रेता आयुर्वेदाचार्य पंडितराज का चित्रण किया है । शहर भर के वकील, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी सब सुन्दर बनने के उद्देश्य से इस विशेष औषध के ग्राहक बन गये । लेकिन कोई सुन्दर नहीं बनता है । आचार्य के चारों ओर भीड़ लग गई । अपने ब्याज व्यापार के रहस्योद्घाटन करता हुआ पंडित राज ने कहा - "उन दिनों मेरी आर्थिक हालत बहुत बिगड़ गयी । फिर मैं ने यह सुन्दर रस दवा बनायी और इस की बिक्री केलिए मैं ने यह झूठा प्रचार किया कि इसी दवा से मेरी बदशक्लत पत्नी इतनी सुन्दर हुई है । मुझे यह पता नहीं था कि मेरे उस झूठ को इतनी बड़ी सजा मुझे झेलनी होगी ... ।"[54] पंडित राज ने आर्थिक विषमता से बचने केलिए दवा बनायी थी । इसी प्रकार भारत-भर में आम जनता को मोहित कर के, धन कमानेवाले ब्याज औषधि निर्माताओं की ओर नाटककार ने आम जनता को चेतावनी दी है ।

53· हानूश भीष्म साहनी, पृ·46

54· सुन्दररस लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·74

अर्थाभाव कभी कभी स्वयं निर्मित भी होता है । परिश्रम किये बिना देश के युवकों के रहने पर यहाँ पैदावार की कमी हो जाती है । सभी समय दूसरों पर दोषारोपण करते, भाषण देते घूमने पर देश की प्रगति नहीं होती है । "रक्त कमल" का "कमल" इस पर अपना विचार व्यक्त करता है - "हमारा यह देश बेहद कमज़ोर है । पहले इस का कारण अंग्रेज़ थे । अब तो हमीं हैं इस के कारण । हमारा संकीर्ण धर्म, हमारी अन्ध जातीयता, प्रान्तीयता और हमारा छोटा स्वार्थ, जिस से हम अपने देश को अपना नहीं अनुभव कर पाते । इतना बडा देश, जिस में इतनी अतुल सम्पत्ति, जिस में मनुष्य की इतनी अपार शक्ति । इस की इतनी उपजाऊ धरती जो अपनी पूरी पैदावार से ऐसे ऐसे चार हिन्दुस्तान से भर पेट दे सकता है और सब ऋतुओं के अनुसार सब को पूरा वस्त्र जुटा सकता है ।"[55]

अर्थाभाव के कारणों पर विचारते समय यह भी सोचना होगा कि स्वनिर्मित गरीबी भी है । अमीर होते हुए भी कई दुर्गुणों का शिकार होकर गरीबी का अनुभव करनेवाले कई लोग होते हैं । "डेनिस वेयटली ने श्रमवान-गरीबों पर प्रकाश डालते हुए कहा है - "लगातार धूम्रपान, अनियंत्रितशराब खोरी, अमित-भक्षण प्रियता, विलम्ब-नीति, अलसता, शंका, निराशा, दुष्टता, कठोरता और अविवेकी स्वभावों के शिकार गरीबी में फंसते हैं । याने नशीली आदतें गरीबी के कारण बनते हैं ।"[56]

---

55. रक्त कमल - लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.99-100 (1960)

56. "Real poverty stems from the losing habits of chain-smoking, excessive drinking, over-eating, procrastination, laziness, anxiety, depression, sloppiness, glultony, dishonesty, cynicism, cruelty and insensitivity."
The Joy of working : Denis Waitley and Reni L.Witt, p.261 (1987)

परिश्रम करके धन कमाना चाहिए । बिना परिश्रम के मिलती संपत्ति अनर्थकारी निकलती है । अक्सर ऐसा देखा जाता है कि पूर्वजों के द्वारा अन्याय के द्वारा कमायी संपत्ति आगामी पीढी को विरासत के रूप में मिलती है । लेकिन उस में कोई मूल्य नहीं रहता है । "रात रानी" के जयदेव के पिता ने अंग्रेज़ों से मुफ्त में जो प्रेस लिया था उस के बारे में कुन्तल से माली का कथन इस का प्रमाण है । जयदेव प्रेस में वक्त पर नहीं जाता है, कर्मचारियों को समय पर वेतन नहीं देता है । प्रेस के कर्मचारी बोनस और वेतन केलिए स्ट्रेक करते हैं । एक कर्मचारी किशोरी को जयदेव ने नौकरी से निकाल दिया । नौकरों के घरवाले गरीबी मे तडपते हैं । कुन्तल ने किशोरी की पत्नी को पचास रूपए दिये तो जयदेव कुपित होकर कुन्तल से झगडा करता है । इस घर की अशांति के कारणों पर प्रकाश डालते हुए माली कहता है - "कारण वही धन है - वही पचास हज़ार रूपए जो मेरे मालिक जय भैया के नाम बैंक में जमा कर गये । कारण वह प्रेस है, जिसे मालिक ने अंग्रेज़ों से भैया केलिए मुफ्त में खरीदा । मैं ने उसकेलिए मालिक से तभी विरोध किया था कि बिना मेहनत के धन भैया को मत दो । अंग्रेज़ों का यह प्रेस मत लो ।"[57]

विदेशी धन को चाहनेवाले लोगों की संख्या आज हमारे देश में बहुत अधिक हैं । वे यह नहीं जानते कि उन से मिलती संपत्ति नाशकारक और संकट कारक है । विदेशी संपत्ति, सभ्यता आदत आदि के पीछे पडनेवालों के बारे में सच्चिदानन्द वात्स्यायन अपने विचार यों व्यक्त करते हैं "पश्चिम हम से ज्यादा समृद्ध हैं, धन ज्यादा है, पूँजी ज्यादा है, यन्त्र ज्यादा है । परन्तु यह ज़रूरी नहीं कि उसकी सांस्कृतिक दृष्टि भी ज्यादा अच्छी ही हो । लेकिन वैसा मान लिया जाता है हमेशा से,

---

57· रात रानी लक्ष्मीनारायणलाल, पृ·116, प्र·सं·1962

जिधर से पैसा अधिक होता है, मान लिया जाता है कि उधर से जो कुछ आता है वह सभी अच्छा है।"[58]

अर्थ केन्द्रित मानव-रिश्ता -

आजकल मानव-रिश्ता धन-मोह पर टिका रहता है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी सम्बन्धों के पीछे रुपए का मोह छिपा रहता है। भगवतीचरण वर्मा ने "वसीयत" के द्वारा यह व्यक्त किया है कि चूडामणि की मृत्यु के बाद उस की संपत्ति हथियाने में सब को जलदबाजी है। निर्देशानुसार शिष्य वसीयत पढना शुरू करता है तो टिप्पणी सुनकर परिवार का हर सदस्य पहले उन्हें कोसता है, बाद में अपने लिये रकम छोडी जाने की बात सुनकर उनकी आत्मिक-शान्ति की कामना करते हुए शोक प्रकट करने लगता है। असल में पिता की मृत्यु पर किसी को दुख नहीं है। वसीयत इस प्रकार हम पढ सकते हैं - "मैं चूडामणि मिश्र आदेश देता हूं कि मेरा अन्तिम संस्कार मेरे प्रिय शिष्य की देखरेख में हो। अन्तिम संस्कार केलिए मैं ने पचास हज़ार की रकम अपनी अलमारी में अलग निकाल रखी हैं जो मेरे दाह संस्कार, ब्राह्मणों, घटवारों एवं महा-पात्रों की दान-दक्षिणा आदि का व्यय काटकर मेरा अन्त्येष्टि संस्कार करनेवाले को मिलेगी।" "मेरा आदेश है कि मेरा अंतिम संस्कार वही कर सकता है जो यज्ञोपवीत धारण किये हो और जिस के सिर पर शिखा हो।"[59] यज्ञोपवीत और शिखा को सख्त नफरत करनेवाले पुत्र ने रुपए के मोह में पड्कर इन दोनों का पालन किया।[60] "वसीयत" ने यह व्यक्त किया है कि पिता को पुत्र से या पत्नी से, अथवा पुत्र को पिता से कोई आत्मीयतापूर्ण नाता नहीं है।

---

58. सभ्यता का संकट सच्चिदानंद वात्स्यायन - नया प्रतीक, पृ.16 भाग 3, 1971 दिसंबर

59. वसीयत भगवतीचरण वर्मा, पृ.40-41, प्र.सं.1978

60. वही, पृ.44

भावतीचरण वर्मा ने, रुपए के लिए हो जीनेवाले मानिकचन्द का जीवन "रुपया तुम्हें खा गया" में दिखाया है । अपनी बीमारीके समय भी, सोने की जंजीर में बंधी सेफ की चाबी लटकाते चलनेवाले मानिक-चन्द से मिलने केलिए उस की पत्नी, पुत्र, पुत्री आदि आये हुए है । दस हज़ार रुपए की चोरी वर्षों के पहले कर के अमीर बने मालिकचन्द अब भी रुपए का दास है । किशोरीलाल मानिकचन्द को समझाते हुए कहता है - "तुम्हारा सुख-शांति अर्थ के पिशाच ने तुम से छीन ली, तुम्हारा सन्तोष उसने नष्ट कर दिया । उस दिन जब तुम दस हज़ार रुपया चुराकर लाये थे, तब तुम ने समझा था कि तुम रुपया खा गए लेकिन मैं समझता हूँ रुपया तुम्हें खा गया ।"[61] इसके बाद सेफ की चाबी मानिकचन्द की पत्नी आकर मांगती है तो उस का जवाब यों है - "सेफ की चाबी नहीं मिलेगी, जब तक मैं जिन्दा हूं । जानती हो इस दुनिया में मेरा कोई नहीं है । बीबी, बच्चे, नातेदार, पडोसी, नौकर ये सब के सब मेरे नहीं है, मेरे रुपए के हैं ।"[62] मानिकचन्द ने उस का जीवन चोरी के रुपए से बर्बाद किया । उसके जीवन में किसी के प्रति प्रेम नहीं है । पत्नी, पुत्र, पुत्री सब उसकेलिए निरर्थक हैं । किसी के प्रति उस का प्यार नहीं है । बुढापे तक पहुंचे हुए कई लोग आजकल ऐसे दीखते हैं जो अपने परिवार के सदस्यों से अधिक भौतिक संपत्ति को महत्व देते हैं ।

वर्तमान पीढी रुपए कमाने केलिए ममता, प्रेम, दया आदि को त्यागती भी हैं । भावतीचरण वर्मा ने "मानिक चन्द" का विश्लेषण करते हुए लिखा है - "आज का हर व्यक्ति रुपए को महत्व देता है ।

---

61. रुपया तुम्हें खा गया भावतीचरण वर्मा, पृ.99

62. वही, पृ.100

रुपए की शक्ति सुख-सुविधा को खरीद सकती है - ऐसा लोगों का ख्याल है । और एक बार जब रुपए की शक्ति को स्वीकार करलिया गया तब मानव उस रुपए का दास बन जाता है । आज के समाज में अधिकांश लोग इस रुपए की शक्ति के उपासक है, और यही गलत मान्यता समाज के कल्याणकारी विकास में बाधक है ।"[63] नाटककार ने यह व्यक्त किया है कि मानिकचन्द ने चोरी के द्वारा दस हज़ार रुपए कमाये जिस से उसका परिवार उस के नियंत्रण से बाहर हुए है । पागल हुए मानिकचन्द के बारे में डाक्टर जयलाल वकील से कहते हैं - "पैसे की घृणित दुनिया में प्रेम, सहानुभूति, ममता, त्याग, दया आदि का कोई विधान नहीं है ....[64] ।"

अपने अर्थाभाव पर पर्दा डालने केलिए कर्ज लेकर भी धूमधाम से जिन्दगी बितानेवाले मध्यवर्गी लोग भी समाज में मौजूद हैं । "नये हाथ" का अजयप्रताप ऐसी एक दिखावा पूर्ण जिन्दगी ही बिताता है । उस की पत्नी उसे समझाने की कोशिश करती है - "कर्ज लेकर शान दिखाने से क्या लाभ ? ज़मीन्दारी के साथ आन-बान भी चली गई । दिन बदल गये हैं, दुनिया बदल गई है, हमें भी समय के साथ बदलना चाहिए[65] ।

रात रानी का प्रेस मैनेजर जयदेव फिज़ूल खर्च का आदी है । जयदेव इंजिनीयर पिता का पुत्र होने के कारण गर्वीला हो गया था । लेकिन उत्कृष्ट चरित्र रखनेवाली कुन्तल अपने पति के स्वभावों में नियंत्रण करने की कोशिश में है । इस बीच अपनी सहेली सुन्दरम से वार्तालापके बीच में, खर्च संभालने केलिए घर के बजट में कटौती की बात कहती है -

---

63. रुपया तुम्हें खा गया भगवतीचरण वर्मा, भूमिका, पृ.16
64. वही, पृ.79
65. नये हाथ विनोद रस्तोगी, पृ.4 (द्वि.सं.1967)

"पिछली जुलाई से इस घर का बजट संभाले नहीं संभलता था । फिर मैं ने बजट में से दो कटौतियाँ कर दीं - यहाँ मे टेलिफोन करा दिया, बाहर के काम्काज केलिए एक नौकर था, उसे हटा दिया ।"[66]

अपने पिता के कमाये धन की फिजूल खर्च करके बेफिक्र हो ऐशो आराम की जिन्दगी बिताने वालों का प्रतिनिधि है "अब्दुल्ला दीवाना" का युवक । सरकारी वकील के सामने युवक का कथन इस का प्रमाण है - "मेरे पास हज़ारों रुपए, पोकट मनी । डाडी कहते - "ब्लेक मनी जलाकर रोशनी करो । मेरे पास कारें, लडकियाँ और मेरा अकेलापन, जी हाँ, धन-दौलत और लडकियों के साथ अकेलापन ।"

गर्ल फ्रेन्ड्स, होटल बिस्तर सिगरेट ड्रिंक्स
फिल्म सेक्स डाक्टर दीवारें दवाइयाँ डैडी
कजिन आंट्स नीम जोक्स डाइवर्जन ।"[67]

भावतीचरण वर्मा ने "रुपया तुम्हें खा गया" में रुपए की चोरी मे होनेवाली विपत्तियों पर प्रकाश डाला है । अपने काम करते दफ्तर मे दस हजार रुपए की चोरी करके मानिकचन्द भाग जाता है । किशोरिलाल कैशियर को इस अपराध पर तीन साल की सज़ा हुई । मानिकचन्द उस धन मे अमीर बना । लेकिन बीमार वह मानसिक संघर्ष में पड्कर डाक्टर के सामने सब कुछ खुले रूप में मानता है । मानिकचन्द के कमाये धन पर पत्नी, पुत्र, पुत्री सब सुखपूर्ण रहते हैं, लेकिन उस की दयनीय हालत पर कोई आता नहीं है । वह कहता है - "लेकिन मैं अपनी बात कहूँगा, और वह बात तुम्हें सुननी पडेगी, हाँ, तो उस बीमारी की हालत में मैं ने अनुभव किया कि ममता, भावना नाम की कोई चीज़

---

66. रात रानी लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.41 (प्र.सं.1962)
67. अब्दुल्ला दीवाना लक्ष्मीनारायणलाल, पृ.66, 104 (प्र.सं.1973)

नहीं है । मैं अकेला इस कमरे में उस पिशाच की भाँति बन्द था, जिस के जीवन में हँसी नहीं, रोना नहीं, एक भयानक सूनापन है ।[68] रुपया खानेवाला मानिकचन्द को रुपए ने खा दिया । इस सत्य को नाटककार ने व्यक्त किया है । नाटककार यों कहते हैं - "मानिकचन्द से बढ़कर दुखी और अभागा आदमी दुनिया में मुश्किल से ही मिलेगा । उस के जीवन में कहीं भी ममता, सहानुभूति, प्रेम आदि भावनायें नहीं हैं । कोई भी ऐसा नहीं है जिसे वह अपना कह सके, हरेक व्यक्ति मानिकचन्द के रुपए का दास है मानिकचन्द का पुत्र, उसकी पत्नी, उसकी लड़की उसके नौकर चाकर कोई भी तो उस का नहीं है । हरेक व्यक्ति की नज़र उसके रुपयों पर है । वह रुपया, जिसे उसने एक दिन समझा था कि वह खा गया, उसे ही खा गया था । वह दस हज़ार रुपए चुराने के पहलेवाला मानिकचन्द गरीब भले ही रहा हो, पर भावना का प्राणी था, दूसरे उसके थे, वह दूसरों का था । और बीमारी में पड़ा हुआ बीस वर्ष बादवाला मानिकचन्द एक नितान्त अकेला और दयनीय प्राणी है - यह मानिकचन्द स्वयं अनुभव करता है ।[69]

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की आर्थिक हालत पर अवलोकन करने से यह कहना पड़ता है कि यहाँ सुविधा भोगी एक वर्ग और भी पनप गये हैं और गरीबों की संख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है । जो धनवान अंग्रेज़ों के जमाने में लखपति थे 43 वर्ष के स्वतंत्रता ने उन्हें करोड़-पति बनाये । सत्ता के सात जो गलबाही करते आये हैं वे भी ऐशो आराम के साथ रहे । आम जनता जिस में शिक्षित और अशिक्षित थे, सच्चाई के साथ रहने लगे तो दाँत तालू में जम गये । इसलिए कुछ सत्य के मार्ग से अन्याय के पथ ग्रहण में मज़बूर हुए । आम जनता की अर्थ विषमता दूर कर के देश के नक्शे को सुन्दर बनाने की चलाई सभी योजनायें

68· रुपया तुम्हें खा गया भगवतीचरण वर्मा, पृ·86, तृ·आवृत्ति 1972
69· वही, पृ·20-21

कागज़ी योजना रह गई । यह बिलकुल सही है कि चलाई गई योजनाओं के फल शासन चक्र चलानेवाले कर्मचारियों के कुतंत्रों से साधारण जनता तक नहीं पहुंचे । अमला तंत्र हथियानेवाले सरकारी नौकर और अफसर देश की आवश्यकताओं के प्रति बन्द नयनों से, तिरस्कृत भावों से देखने पर देश की प्रगति नहीं होती है । समाजवाद की इस कमी को श्री कुबेरनाथ राय ने व्यक्त किया है - "समाजवाद की ट्रेजडी यह है कि जैसे जैसे वह प्रबल और स्थाई होता है उसी अंश में अमलातंत्र भी प्रबल और स्थायी भी होता जाता है । व्यवहार में समाजवाद सर्वत्र ही "अमला तांत्रिक समाजवाद है । यह समाजवाद ही नहीं, प्रत्येक अधिनायकत्व मुखी व्यवस्था की एक अपविशिष्टता है और इस के परिहार का शुद्ध समाजवाद में कोई उपाय नहीं - अवश्य ही गणतांत्रिक समाजवाद में इस दोष के परिष्कार का अल्प अवकाश है । शुद्ध समाज वाद में प्रेस और साहित्य दोनों पर अमलातंत्र द्वारा सरकारी नियंत्रण रहता है । अत: सारा देश ही एक कपाट-बद्ध, और अवरुद्ध वायु का एक बध कक्ष बन जाता है[70]।"

आम जनता भारत के नागरिक के पद से "वोटर" के पद पर गिर गई । जनता के रक्षक उनके भक्षक ही बन गये । हरिकृष्ण प्रेमी ने "आन का मान" में अकबर की पुत्री सफीयत्तुन्निसा के माध्यम से यह व्यक्त किया है - "प्रजा स्वयं अपनी रक्षा करेगी और सच बात तो यह है कि राजा, महाराजा और सम्राट ही तो सबसे बडे लुटेरे हैं । प्रजा की गाढी कमाई का धन लूट लूट कर अपने कोष भरना और उससे अपने विलास के साधन जुटना ही तो इन का काम है[71]।" जनता को लूट खसोट कर अपने अधिकार को जारी रखने की होड में लगे हुए नेताओं और राजनीतिज्ञों का परिचय पिछले अध्याय में दे चुका हूँ ।

---

70. समाजवाद, अमला तंत्र और साहित्यकार श्री कुबेरनाथ राय "सरस्वती", पृ.17, जनवरी 1973

71. आन का मान हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.112 (च.सं.2022 विक्रम)

आर्थिक क्षेत्र में पनपी हुई विसंगतियों का विश्लेषण करने से यह जाहिर है कि भारत के बहुसंख्यक लोग एक दफे भोजन करने में असमर्थ होकर खाली पेट चलते हैं, बहुतोंकेलिए एक छोटा सा बसेरा भी अपनी पहुँच के परे है, बेकारी उनके सामने मुँह बाये खडी है । यों वे जीवन की बुनियादी ज़रूरतों से वंचित हैं । दरअसल उनकी दर्दनाक हालत केलिए ऐसे सुविधा भोगी लोग ही जिम्मेदार हैं जो जीवन के सारे नैतिक मूल्यों को कुचलते हुए स्वार्थ की अन्धी दौड धूप में लगे हुए हैं ऐसे लोगों के बारे में नेहरू का कथन बिल्कुल सच है - "धनी होने पर, अथवा धन कमाने की चतुरता रखते हुए भी, वह व्यक्ति सभ्यता और शिष्ठता की शर्तों का पालन नहीं करता ।"[72]

ठठठठठठठठठठठठठ

---

72. "A person with a large amount of money need not necessarily have high cultural standards or high literary standards or any high standards at all, though he may have the knack of making money" 'Wit and Wisdom of Nehru', P 604